E-ISSN: 2706-8927
P-ISSN: 2706-8919
IJAAS 2019; 1(1): 69-71
Received: 15-05-2019
Accepted: 21-06-2019

ज्वाला चन्द्र चौधरी
पूर्व शोधार्थी, विश्वविद्यालय,
हिन्दी–विभाग, ल.ना.मि.वि.,
दरभंगा, बिहार, भारत

Corresponding Author:
ज्वाला चन्द्र चौधरी
पूर्व शोधार्थी, विश्वविद्यालय,
हिन्दी–विभाग, ल.ना.मि.वि.,
दरभंगा, बिहार, भारत

'मुर्दहिया': दलित संस्कृति की गाथा

ज्वाला चन्द्र चौधरी

सारांश :
दलित साहित्याकाश को जिन दलित कलमकशों ने भुक्त यथार्थालोक से आलोकित किया, उनमें दलित–चेतना–दिवाकर तुलसीराम अग्रगण्य प्रतीत होते हैं। इनकी 'मुर्दहिया' वह आत्मकथात्मक मशाल है, जिसके प्रकाश से सरोबोर है, उनका संपूर्ण संघर्षी व्यक्तित्व।

प्रस्तावना :
डॉ. तुलसीराम की आत्मकथा 'मुर्दहिया' में उनकी बाल्यावस्था से लेकर युवावस्था के बीच की घटनाओं का केवल चित्रण ही नहीं है, बल्कि लेखक ने अपनी आत्मकथा में भारतीय समाज के विविध सामाजिक यथार्थ का अनावरण भी किया है। 'मुर्दहिया' के माध्यम से उन्होंने दलित बस्ती की जिंदगी और अनेकानेक घटनाओं के बहाने वहाँ के लोकजीवन पर भी प्रकाश डाला है। लेखक ने भूमिका में स्वयं लिखा है, ''जमाना चाहे जो भी हो, मेरे जैसा कोई अदना जब भी पैदा होता है, वह अपने इर्द–गिर्द घूमते लोक–जीवन का हिस्सा बन ही जाता है। यही कारण था कि लोकजीवन हमेशा मेरा पीछा करता रहा। परिणामस्वरूप मेरे घर से भागने के बाद जब 'मुर्दहिया' का प्रथम खण्ड समाप्त हो जाता है तो गाँव के हर किसी के मुख से निकले पहले शब्द से तुकबंदी बनाकर गानेवाले जोगीबाबा, लक्कड़ ध्वनि पर नृत्यकला बिखेरती नटिनिया, गिद्ध–प्रेमी पग्गलबाबा तथा सिंघा बजाता बंकिया डोम आदि जैसे जिंदा लोक–पात्र हमेशा के लिए गायब होकर मुझे बड़ा दुःख पहुँचाते हैं।''[1]
तुलसीराम ने 'मुर्दहिया' में अपनी आत्मकथा लिखते हुए अपने आसपास के लोगों तथा वहाँ के समाज में व्याप्त रीति–रिवाज, रुढ़ियाँ, अंधविश्वास आदि का बड़ा ही रोचक और यथार्थ चित्र खींचा है। पहले अध्याय में अपनी 'भुतही पारिवारिक पृष्ठभूमि' की चर्चा करते हुए उन्होंने लिखा है कि किस प्रकार उनके दादा की मृत्यु के पीछे भूत के होने का अंधविश्वास फैल गया था और उसके बाद उनके घर में भूत की पूजा होने लगी। शुभ या अशुभ कार्यों में चमरिया माई की तथा डीह बाबा की पूजा तथा अन्य देवी–देवताओं की पूजा के साथ भूत की पूजा भी होती है। गाँव के दलित ही नहीं, बल्कि ब्राह्मण भी अपने किसी मरे हुए पूर्वज के भूत की पूजा ब्रह्म बाबा के रूप में करते हैं। दलित बस्ती में अपने देवताओं को सूअर तथा बकरे की बलि दी जाती थी। तथा 'हलवा–सोहारी' (पूड़ी) धार और पुजौरा भी चढ़ाया जाता था। लेखक ने एक समाजशास्त्री की तरह लोकजीवन में व्याप्त अंधविश्वास के प्रतीक इन शब्दों को भी परिभाषित कर समझाने की कोशिश की है।[2]
मुर्दहिया के लोकजीवन में अंधविश्वास का यह आलम था कि बीमार पड़ने पर लोग डॉक्टर से इलाज नहीं कराना चाहते थे, बल्कि झाड़–फेंक के द्वारा बीमार को ठीक कराने का यत्न करते थे। लेखक को तीन साल की आयु में चेचक की बीमारी हो गई, जिससे वे मरणासन्न हो गए, किंतु घर वाले उनका इलाज नहीं कराते हैं, ''मेरे ऊपर चेचका प्रकोप इतना जबरदस्त था कि जीवित रहने की उम्मीद घर वाले लगभग छोड़ चुके थे। उपरोक्त देवी–देवताओं की मनौती के अलावा कोई चिकित्सकीय इलाज किसी भी तरह संभव नहीं था, क्योंकि घरवाले घोर अंधविश्वास के कारण दवा लेने से हठ के साथ इनकार कर देते थे।''[3] किसी प्रकार लेखक की जान बच गई, किंतु इस बीच देवी–देवताओं की विभिन्न मनौतियों में सूअर, बकरा तथा भैंसा भी शामिल हो चुका था। चेचक के बाद लेखक ने अपने चेहरे को आखा की पेंदी का बाहरी हिस्सा जैसा बताया। चेचक से उनकी दाईं आँख की रोशनी हमेशा के लिए विलुप्त हो जाती है, जिससे परिवार एवं समाज में उनको 'कनवा' की उपाधि दे दी जाती है तथा हमेशा के लिए अपशकुन की श्रेणी में डाल दिया जाता है, ''भारत के अंधविश्वासी समाज में ऐसे व्यक्ति 'अशुभ' की श्रेणी में हमेशा के लिए सूचीबद्ध हो जाते हैं।''[4]
तुलसीराम जी ने इस अपशकुन के संबंध में एक बड़ी दिलचस्प बात यह बताई है कि इसके लिए किसी जाति विशेष का कोई संबंध नहीं है, क्योंकि उनके गाँव में उनके अलावा दो और लोग भी अपशकुन की श्रेणी में रखे गए हैं–जंगू पांडे और एक अन्य विधवा बुढ़िया ब्राह्मणी। अभिप्राय यह कि समाज का हर तबका शिक्षा से दूर था तथा ऐसे अंधविश्वासों का शिकार था। गाँव के तथाकथित सबसे संपन्न वर्ग ब्राह्मणों का भी यही हाल था। वे भी भूत प्रेत तथा इन अंधविश्वासों के शिकार थे।

इस अपशकुन के संबंध में तुलसीराम ने विस्तार से लिखा है, ''लोगों का मानना था कि जंगू पांडे की निगाह पड़ते ही बहुओं का अनिष्ट हो जाएगा। संभवतः वे निर्वंश हो जाएगी। इस संदर्भ में एक घटना याद आने पर आज भी दुख की अनुभूति होती है। मेरे घर के पास एक आम के पेड़ में खूब बौरे आए थे, अचानक जंगू पांडे आकर आम के बौरों को देखने लगे, क्योंकि बौर बहुत अच्छे लग रहे थे। मेरे घर वालों ने कहना शुरू कर दिया कि जंगू पांडे की नजर लग गई। अब फल नहीं आएँगे, जबकि बाद में खूब फल आए। इसी तरह गाँव की एक अन्य बुढ़िया ब्राह्मणी थी, जिसका नाम किसी को मालूम नहीं था। वह सिर्फ पंडिताइन के रूप में जानी जाती थी। पंडिताइन निर्वंश विधवा थी। उन्हें भी लोग देखना पसंद नहीं करते थे। गाँव भर के लोगों का कहना था कि पंडिताइन का सामना हो जाने से किसी काम में सफलता नहीं मिलेगी।''(5)

तुलसीराम जी ने 'मुर्दहिया' में अपने स्कूल जाने की घटना का बड़ा रोचक वर्णन किया है तथा बताया है कि पंडित के साइत देखने पर ही उनके स्कूल आरंभ का दिन तय किया जाता है। वे स्कूल में व्याप्त छुआछूत की चर्चा करते हुए समाज में दलितों की दयनीय स्थिति का मर्मातक चित्रण करते हैं, किंतु बड़ी ईमानदारी के साथ जो सवर्ण साथी या शिक्षक इनकी सहायता करते हैं उनकी मानवीय दृष्टि और सुहृद व्यवहार को भी उन्होंने रेखांकित किया है। 'चमरा', 'कनवा' जैसे उद्‌बोधनों को सुनने के बाद भी उनका हौसला कभी पस्त नहीं हुआ तथा शिक्षा के प्रति उनकी लगन बढ़ती गई, जिससे उन्होंने तमाम विरोधों के बावजूद अपने स्कूल में प्रथम आकर स्कूल के रेकॉर्ड को ब्रेक किया।

'मुर्दहिया' में अनेक ऐसे अपने लोकप्रिय तथा चहेते चरित्रों की चर्चा तुलसीराम जी ने की है, जिसके बिना शायद उनकी आत्मकथा भी पूरी नहीं होती। लोकजीवन के ये पात्र इतने जीवंत हैं कि उनके बारे में जानना दिलचस्प है। ऐसा ही एक व्यक्ति हिंगुहारा था जो हींग बेचने गाँव में आता था तथा घर–घर जाकर 'हींग के पइसा खर्रा कर' गाकर लोगों से हींग का पुराना पैसा माँगता था तथा गाँव के बच्चे उस पंक्ति को दुहराकर उसमें जीवन का आनंद उठाते थे। इसी तरह से साल में एक बार गाँव में आने वाले सारंगी बजाकर गायन करने वाले गेरुएधारी बाबा की लोकप्रियता की चर्चा है। इसी क्रम में जोगी बाबा का किस्सा बड़ा दिलचस्प है। जोकि जाति से नोनिया थे तथा लोगों को अंदाजा था कि वे भूतपूजक थे। उनके बारे में लेखक ने बताया है, ''उनकी सबसे बड़ी एक अति रोचक विशेषता यह थी कि उनके सामने जिस किसी भी व्यक्ति के मुँह से जो भी पहला शब्द निकलता था, वे उसी शब्द से तीन सतर वाली कविता तत्काल बनाकर एक विचित्र स्वर शैली में गाने लगते थे। जैसे किसी के मुँह से निकल गया 'जोगी बाबा', वे तुरंत गाने लगते :

जइसन कहत बाड़ा जोगी
वइसन बढ़त बाड़े रोगी
बड़ सँसतिया सहबा राम
बड़ सँसतिया सहबा राम।''(6)

हाजिरजवाब काव्य के अत्यंत कुशल कवि जोगी बाबा कभी गद्य में बात नहीं करते थे, जिससे लेखक बहुत प्रभावित हैं तथा उनको ऐसा लगता है कि दुनिया में जोगी बाबा जैसा न कोई हुआ है और न होगा।

ऐसा ही एक पात्र है बंकिया डोम, जिसकी शैली अलग थी तथा उसका परिवार पेशे से बाँस के फट्टे चीरकर टोकरी, डाल, मौनी आदि बनाकर बाजार में बेचता था। वह 'सिंघा' नामक वाद्य बजाने में अद्वितीय था। जब भी आसपास के गाँव में किसी के यहाँ विवाह, मृत्युभोज आदि का आयोजन होता वह बिना निमंत्रण के वहाँ अपना सिंघा बजाने पहुँच जाता, ''उस समय ऐसा लगता था कि मानो वह युद्ध की तैयारी के लिए रणभेरी बजा रहा हो।''(7) बंकिया डोम के सिंघा बजाने की शैली से लोगों को पता चल जाता था कि उसे भोज में भोजन मिला है या नहीं। वह अपने सिंघा की ध्वनि से ज्ञात करा देता था कि भोज में उसके साथ क्या बर्ताव हुआ है। 'मुर्दहिया' के लोक जीवन में ऐसे विविध चरित्रों की भरमार है, जिनसे दुखद और त्रासद जीवन जीवंत हो उठता है। दलित बस्ती में अभाव है, भूख है, गरीबी है, अशिक्षा है, अंधविश्वास है, अंधकार है किंतु गरीबी के बीच भी कई ऐसी छोटी–छोटी घटनाएँ हैं जो इस आत्मकथा को औपन्यासिक कलेवर प्रदान करते हैं। साथ ही आते–जाते हुए चरित्र हैं जो गाँव की जिंदगी को अपनी उपस्थिति से संगीतमय बनाते हैं, ''उस हिंगुहारा की तरह कई अन्य भी वैसे हमारे गाँव में आते थे। जैसे– पटहारा, जो शीशा, कंघी, सूई, डोरा, टिकुली तथा मीसी बेचने आता था, चुड़िहारा, जो चूड़ियाँ बेचता तथा कपड़हारा, जो कपड़े बेचने आता था। ये सभी कुछ न कुछ अजीब स्वरों में गाते हुए घरघुमनी करते हुए अपना सामान बेचते थे। सभी को अपना व्यापारिक संगीत था...जब भी बाइस्कोप वाला आता, वह गा–गाकर सारी दुनिया को दिखा देता था और जब बाइस्कोप की अंतिम स्लाइड हावड़ा पुल दिखाता तो जोर–जोर से गाने लगता ''मारै गंडन से नजरिया, गोरिया हबड़ा पुलवा पर उड़ी' तो गाँव के बच्चे झूम उठते।''(9) दलित बस्ती में गरीबी और अभाव से लोगों को रोज जूझना पड़ता था। चाहे बरसात का मौसम हो या जाड़े की ठंड रात, ये सभी कष्टदायी होते थे। वर्षा के मौसम में जहाँ रात को टपकते छत से खुद को बचाने में रात बीत जाती थी, वहीं जाड़े की रात में पुआल के नीचे सोते हुए लेखक को लगता था कि मुर्दे की भाँति कफन ओढ़कर सो रहे सभी लोग अपनी चिता जलने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। किंतु इस दरिद्रतापूर्ण जीवन में लोकतत्त्व की संगीतमयी ध्वनि उसके उत्साह को बनाए रखता है, ''चाहे जो भी हो, उन दारुण दिनों में भी ग्रामीण जीवन के हर अंग में व्याप्त संगीतीय ध्वनि चाहे उस हिंगुहारे या पटहारे या चुड़िहारे की हो या फिर उन जोगी बाबाओं की सारंगी या तुकबंदियों की या कि उस तूरमयी बंकिया डोम के युद्धोन्मादी सिंघे की इन सबके सहारे हँसते हुए दरिद्रता की धज्जियाँ उड़ाने में हमें बड़ी राहत की अनुभूति होती थी।''(10)

तुलसीराम जी ने मुर्दहिया में नटिनिया का जो चित्र खींचा है, वह अद्‌भुत इस मायने में है कि वह बहुत बोल्ड लड़की है, जिसके कारण सभी लोग उसे बिगड़ी हुई मानते हैं। मुर्दहिया में तुलसीराम ने अकाल और उससे उपजी स्थिति का सूक्ष्म विश्लेषण किया है। हर जाति और वर्ग पर अकाल के पड़ने वाले प्रभाव की चर्चा उन्होंने की है। अकाल से जुड़े अंधविश्वास और उससे उपजी विभिन्न बीमारियों का चित्रण भी किया है।

मुर्दहिया में 'विपश्यना' करने वाले गिद्ध भी लोक–जीवन का हिस्सा हैं। दरअसल मुर्दहिया वैसे तो गाँव का श्मशान है लेकिन लेखक के लिए वह बहुउद्देश्यीय कर्मस्थली है जैसाकि उन्होंने कहा कि हरवाही से चरवाही तक के सारे रास्ते वहीं से गुजरते थे। लेखक जब ज्ञान–प्राप्ति का साधन ढूँढ़ता है, तो वह बुद्ध की तरह मुर्दहिया के पीपल के नीचे बैठ जाता है और घर छोड़ने का निर्णय भी वहीं लेता है। जीवन को जीने की कला मृत्यु को स्वीकार कर ही सीखी जा सकती है। इस अर्थ में मुर्दहिया एक प्रतीक बन जाती है। दलित द्वारा मुर्दहिया में मरे हुए पशुओं की खाल छीलकर उसके चमड़े से धन उपार्जित किया जाता है और ब्राह्मणों से लड़ाई होने पर मरे हुए पशुओं की हड्डियों का इस्तेमाल हथियार की तरह भी किया जाता है। जब मर्दहिया की रंगस्थली में मांस नोचने के लिए गिद्ध, सियार, कौए, कुत्ते और कभी–कभी इन्सान भी उसमें शामिल हो जाते हैं तो वहाँ पशु और मनुष्य के बीच का अंतर मिट जाता है और हम जाति–व्यवस्था की विद्रूपताओं से विचलित हो उठते हैं।

मुर्दहिया सबकी मुक्तिदाता है, लेकिन इसके साथ ही जुड़ा है जीवन के अनेक रंग और लोक–तत्वों से सराबोर लेखक के मन की अनेक तस्वीर जहाँ मानवीय संवेदनाओं से ओतप्रोत अनेक दृ

ष्टांत दिखाई पड़ते हैं। मुर्दहिया में लोकजीवन समग्रता में विविध आयामों के साथ उपस्थित है जिसमें शोषण से उपजी विद्रूपता हैं, साथ ही प्रतिरोध के स्वर भी। अंधविश्वास का साम्राज्य है और आधुनिकता का प्रकाश भी। 'मुर्दहिया' लोकजीवन के संदर्भ में स्वतंत्र अध्ययन की अपेक्षा रखता है।

अस्तु, हम कह सकते हैं कि दलित चेतना के सारस्वत दूत तुलसीराम की समस्त रचनाओं में दलित संघर्ष की वह आग है, जो साहित्यिक लपट बनकर लपलपा रही है। दलित लेखनी जो दलित–दर्शन कराया है, वह जनक्रांति के साथ है।

संदर्भ–ग्रंथ :

1. मुर्दहिया सं.– डॉ० तुलसी राम, पृ०–भूमिका से, राजकमल प्रकाशन प्र०लि० 1वी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली' 110002
2. मुर्दहिया– पृ०– 13
3. वही, पृ०– 12
4. वही, पृ०– 12
5. वही, पृ०– 37
6. वही, पृ०– 65
7. वही, पृ०– 67
8. वही, पृ०– 72
9. वही, पृ०– 87
10. वही, पृ०– 102